

# श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 45 — कृष्ण गुरुपुत्र को लौटा लाते हैं

5 October 2026



कंस-वध के पश्चात् कृष्ण और बलराम देवकी-वासुदेव के चरणों में झुकते हैं, उग्रसेन को सिंहासन पर बिठाते हैं, नन्द को ब्रज लौटाते हैं, और सान्दीपनि मुनि के आश्रम में विनम्र शिष्य बनकर रहते हैं — जिनके खोए हुए पुत्र को वे यमपुरी से लौटा लाते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध का यह पैतालीसवाँ अध्याय प्रभु को विजय के बाद के कोमल कर्तव्यों से होते हुए गुरु के आश्रम तक ले जाता है — जहाँ गुरु दक्षिणा में केवल अपना मृत पुत्र माँगते हैं।

## अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, पूर्वार्ध)

- अध्याय: 45 (पञ्चचत्वारिंश अध्याय)
- अध्याय शीर्षक: कृष्ण अपने गुरु के पुत्र को लौटा लाते हैं
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए); कथा के भीतर श्रीकृष्ण, यमराज और गुरु सान्दीपनि
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: मथुरा; अवन्तीपुर में सान्दीपनि का आश्रम; प्रभास का समुद्रतट; यमराज की नगरी संयमनी
- केंद्रीय विषय: देवकी-वसुदेव का सान्त्वन; उग्रसेन का राज्याभिषेक; नन्द की व्रज-वापसी; यज्ञोपवीत-संस्कार; सान्दीपनि के यहाँ विद्याध्ययन; गुरुपुत्र की पुनर्प्राप्ति
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 45, श्लोक 1-50
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, दशम स्कन्ध, अध्याय 45)

## पूर्व अध्याय का संदर्भ

चौवालीसवें अध्याय में कृष्ण ने रंगभूमि में कंस का वध किया और बलराम ने उसके आठ भाइयों को मार गिराया। फिर दोनों भाइयों ने देवकी और वसुदेव को बन्धन से मुक्त कर उनके चरणों में प्रणाम किया; अपने पुत्रों में जगदीश्वर को देखकर माता-पिता विस्मय में ठिठक गए और उन्हें गले लगाने का साहस न कर सके।

## कृष्ण देवकी-वसुदेव को सान्त्वना देते हैं

शुकदेवजी ने कथा आगे बढ़ाई। प्रभु ने देखा कि उनके माता-पिता ने उनकी ईश्वरता का सत्य समय से पहले ही जान लिया — इससे पहले कि वे उन्हें केवल अपने बालक के रूप में प्रेम करने का माधुर्य चख पाते। अतः पुरुषोत्तम ने अपनी वह माया फैला दी जो उनके अपने जनों को भी मोहित कर देती है, ताकि वह ज्ञान टिका न रहे।

श्रीशुक उवाच

पितरावुपलब्धार्थो विदित्वा पुरुषोत्तमः ।

मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥

*śrī-śuka uvāca pitarāv upalabdhārthau viditvā puruṣottamaḥ mā bhūd iti nijāṁ māyām tatāna jana-mohinīm*

अर्थ: श्रीशुकदेवजी ने कहा: यह जानकर कि माता-पिता ने उनके विषय में सत्य जान लिया है, पुरुषोत्तम ने “ऐसा न हो” सोचकर अपनी जनमोहिनी माया फैला दी। (स्कन्ध 10, अध्याय 45, श्लोक 1)

फिर बड़े भाई के साथ सात्वत-शिरोमणि ने माता-पिता के सामने विनयपूर्वक सिर झुकाया और उन्हें प्रसन्न करने के लिए “माँ” और “पिताजी” कहकर पुकारा। उन्होंने कहा — आप सदा हमारे लिए तरसते रहे, पर अपने पुत्रों का शैशव, बाल्य और कुमार अवस्था देखने का सुख आपको कभी न मिला; और हम अभागे, माता-पिता के घर में दुलारे जाने वाले बच्चों का आनन्द कभी न जान सके।

फिर उन्होंने उस ऋण की बात कही जो हर सन्तान पर होता है।

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः ।

न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥

*sarvārtha-sambhavo deho janitaḥ poṣito yataḥ na tayor yāti nirveśaṁ pitror martyaḥ śatāyusā*

अर्थ: जिन माता-पिता से यह देह — जो समस्त पुरुषार्थों का साधन है — जन्मी और पली, उनका ऋण सौ वर्ष सेवा करके भी कोई मनुष्य नहीं चुका सकता। (स्कन्ध 10, अध्याय 45, श्लोक 5)

उन्होंने आगे कहा — जो समर्थ पुत्र अपने माता-पिता का भरण-पोषण नहीं करता, मृत्यु के बाद यमदूत उसे उसका अपना मांस खिलाते हैं। जो सामर्थ्य होते हुए भी माता, वृद्ध पिता, साध्वी पत्नी, शिशु पुत्र, गुरु, आश्रित ब्राह्मण और शरणागत का पालन नहीं करता, वह साँस लेता हुआ भी मृत है। हमारे दिन व्यर्थ बीत गए, क्योंकि कंस के भय ने हमें आपकी सेवा न करने दी। हे माता-पिता, उस दुष्ट से पीड़ित और परवश आपके प्रति हमारे इस अपराध को क्षमा कीजिए।

विश्वात्मा श्रीहरि, जो अपनी माया से मनुष्य-से दिखते थे, के इन वचनों से मोहित होकर उस राजदम्पती ने उन्हें गोद में बिठाया, बाँहों में भर लिया और अश्रुधाराओं से नहला दिया। स्नेह की रस्सियों में बँधे, गला रूँधा हुआ — वे कुछ भी न कह सके।

यहाँ एक रहस्य छिपा है। प्रभु देवकी-वसुदेव से विस्मय नहीं चाहते; वे उनके पुत्र होना चाहते हैं। उनके ऐश्वर्य का ज्ञान माता-पिता को जीवन भर आदर की दूरी पर खड़ा रखता, इसलिए वे स्वयं उस ज्ञान पर परदा डाल देते हैं। जो माया अन्यत्र संसार को बाँधती है, वही यहाँ प्रेम की सेवा करती है — वह एक माँ को ईश्वर को गोद में लेकर रोने देती है। ऐसा वात्सल्य प्रभु को उनकी महिमा के किसी भी स्तवन से अधिक प्रिय है।



अपनी माया से माता-पिता के ईश्वरता-ज्ञान पर परदा डालकर कृष्ण पुत्र की तरह देवकी-वसुदेव के आगे झुकते हैं और कंस के भय में खोए वर्षों के लिए क्षमा माँगते हैं; विह्वल माता-पिता उन्हें गोद में लेकर आँसुओं से नहला देते हैं।

## उग्रसेन का राज्याभिशेक और यदुवंशियों को घर-वापसी

माता-पिता को सान्त्वना देकर देवकीनन्दन ने अपने नाना उग्रसेन को यदुवंश का राजा बनाया। उन्होंने कहा — “महाराज, हम अपने सेवकों और मथुरा की प्रजा को आज्ञा दीजिए। ययाति के शाप से यदुवंशी राजसिंहासन पर नहीं बैठ सकते; पर जब मैं आपका सेवक बनकर आपकी सेवा में रहूँगा, तब देवता भी सिर झुकाकर आपको भेंट देंगे — अन्य राजाओं की तो बात ही क्या?”

फिर विश्वकर्ता श्रीकृष्ण ने कंस के भय से मथुरा छोड़कर परदेश में क्षीण हुए अपने सभी सम्बन्धियों — यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह, कुकुर आदि — को चारों दिशाओं से बुला लिया। उन्होंने उन्हें ढाढ़स बँधाया, धन से तृप्त किया और उनके अपने घरों में बसा दिया। कृष्ण और संकर्षण की भुजाओं से सुरक्षित, अपनी पीड़ा भूलकर वे सुख से रहने लगे। प्रतिदिन वे मुकुन्द के उस कमल-मुख का दर्शन करते जो सदा आनन्द से खिला और करुणामय मुस्कान भरी चितवन से जीवन्त रहता; अपने नेत्रों के पात्र से उसका अमृत पीते हुए वहाँ के वृद्ध भी फिर युवा हो उठे।



कृष्ण अपने नाना उग्रसेन को यदुवंश के सिंहासन पर बिठाकर स्वयं को राजा का सेवक कहते हैं, और वचन देते हैं कि जिसकी सेवा में प्रभु हों, उसे देवता भी भेंट लाएँगे।

## नन्द व्रज लौटते हैं

अब संकर्षण के साथ प्रभु नन्द के पास गए और उन्हें गले लगाया। “पिताजी,” उन्होंने कहा, “आपने और माता यशोदा ने हम दोनों का बड़े यत्न से लालन-पालन किया है। माता-पिता का अपनी सन्तान के प्रति प्रेम निश्चय ही अपने प्राणों के प्रेम से भी गहरा होता है।”

स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ।

शिशून् बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥ २२ ॥

*sa pitā sā ca janani yau puṣṇitām sva-putra-vat śisūn bandhubhir utsṛṣṭān akalpaiḥ poṣa-rakṣaṇe*

अर्थ: वही सच्चा पिता और वही सच्ची माता है, जो पालन-रक्षण में असमर्थ सम्बन्धियों द्वारा त्यागे गए शिशुओं को अपनी सन्तान की तरह पालते हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 45, श्लोक 22)

“प्रिय पिता, अब आप व्रज लौट जाइए। यहाँ अपने स्वजनों को कुछ सुख देकर हम आपसे और स्नेह में हमारे लिए व्याकुल अपने सब लोगों से मिलने आएँगे।” नन्द और व्रजवासियों को यों सान्त्वना देकर अविनाशी प्रभु ने उन्हें वस्त्र, आभूषण, पात्र और प्रेम-उपहारों से सम्मानित किया। स्नेह से अभिभूत नन्द ने दोनों भाइयों को हृदय से लगाया और आँखों में आँसू भरे गोपों के साथ व्रज लौट गए।

## यज्ञोपवीत और ब्रह्मचर्य का व्रत

फिर वसुदेव ने अपने कुलपुरोहित गर्ग और अन्य ब्राह्मणों से शास्त्रविधि के अनुसार दोनों पुत्रों का द्विजत्व देने वाला यज्ञोपवीत-संस्कार करवाया। उन्होंने ब्राह्मणों की पूजा की, दक्षिणा दी, और सोने के हार तथा रेशमी मालाओं से सजी, बछड़ों सहित गौएँ भेंट कीं। कृष्ण के जन्म की रात मन में किए संकल्प को स्मरण कर उदारहृदय वसुदेव ने वे गौएँ भी दान कर दीं जिन्हें उन्होंने तब मन-ही-मन दे दिया था और जिन्हें कंस ने अन्यायपूर्वक छीन लिया था। द्विज बनकर दोनों भाइयों ने यदुकुल के आचार्य गर्ग से ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण किया।



कुलपुरोहित गर्ग के निर्देशन में वसुदेव दोनों पुत्रों का यज्ञोपवीत-संस्कार कराते हैं और वे गौएँ दान करते हैं जिन्हें उन्होंने कृष्ण-जन्म की रात मन-ही-मन संकल्पित किया था।

## सान्दीपनि के आश्रम में शिष्य

यद्यपि वे दोनों भाई सर्वज्ञ जगदीश्वर और समस्त विद्याओं के उद्गम थे, उन्होंने अपने स्वयंसिद्ध ज्ञान को मानव-से कर्मों के पीछे छिपाया और संसार के सामने आदर्श रखने के लिए गुरुकुल में रहना चाहा। अतः वे अवन्तीपुर में रहने वाले काश्यवंशी ब्राह्मण सान्दीपनि के पास गए और देवता की तरह उनकी सेवा करके सबको गुरु के प्रति उचित आचरण सिखाया।

यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ।

ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥

*yathopasādyā tau dāntau gurau vṛttim aninditām grāhayantāv upetau sma bhaktyā devam  
ivādṛtau*

अर्थ: विधिपूर्वक गुरु के पास पहुँचकर उन दोनों संयमी भाइयों ने भक्ति से, देवता की तरह आदर करते हुए, गुरु की सेवा की और इस प्रकार संसार को गुरु के प्रति निर्दोष आचरण सिखाया। (स्कन्ध 10, अध्याय 45, श्लोक 32)

ऐसी निष्कपट सेवा से प्रसन्न सान्दीपनि ने उन्हें छहों अंगों सहित वेद और उपनिषद्, रहस्य-मन्त्रों सहित धनुर्वेद, धर्मशास्त्र, दर्शन और न्याय, तथा छह अंगों वाली राजनीति सिखाई। समस्त विद्याओं के प्रवर्तक होने से नरश्रेष्ठ दोनों भाइयों ने एक बार सुनते ही सब ग्रहण कर लिया, और फिर गुरु से दक्षिणा माँगने का आग्रह किया।

अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः ।

गुरुदक्षिणाचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥ ३६ ॥

*aho-rātrais catuṣ-ṣaṣṭyā saṁyattau tāvatīḥ kalāḥ guru-dakṣiṇayācāryaṁ chandayām āsatur nṛpa*

अर्थ: हे राजन्, चौंसठ दिन-रात में पूर्ण एकाग्रता से उन्होंने उतनी ही कलाएँ सीख लीं, और फिर आचार्य से अपनी इच्छित गुरुदक्षिणा माँगने का अनुरोध किया। (स्कन्ध 10, अध्याय 45, श्लोक 36)



अपनी सर्वज्ञता छिपाकर दोनों भाई सान्दीपनि की देवता की तरह सेवा करते हैं और वेद, धनुर्वेद, धर्म और राजनीति सीखते हैं — एक बार सुनते ही सब ग्रहण कर चौंसठ दिनों में चौंसठ कलाएँ सिद्ध कर लेते हैं।

## गुरुदाक्षेणाः प्रभास में खोया हुआ बालक

सान्दीपनि ने यह चमत्कार देखा था — बिना परिश्रम सारी विद्याएँ सिद्ध, मानव से परे बुद्धि। अपनी पत्नी से विचार करके ब्राह्मण ने दक्षिणा में प्रभास के समुद्र में खोए अपने बालक की वापसी माँगी। “ऐसा ही हो,” कहकर दोनों भाई रथ पर चढ़े, प्रभास पहुँचे और तट पर क्षण भर बैठे। उन्हें पहचानकर समुद्र के अधिष्ठाता देव भेंट लेकर सामने आए। प्रभु ने कहा — “मेरे गुरु के पुत्र को तुरन्त लौटाओ, जिसे तुमने यहाँ अपनी विशाल लहर में निगल लिया था।”

समुद्र ने उत्तर दिया — “प्रभु, उसे मैंने नहीं लिया। पञ्चजन नामक एक महान् दैत्य इन जलों के भीतर शंख के रूप में रहता है; निश्चय ही वही बालक को ले गया।” कृष्ण तत्काल जल में उतरे और उस दैत्य को परास्त किया — पर बालक उसके भीतर नहीं था। जो शंख उस दैत्य का शरीर था, उसे लेकर प्रभु रथ पर लौट आए।

फिर हलधर बलराम के साथ श्रीकृष्ण यमराज की प्रिय नगरी संयमनी गए और वहाँ वह शंख बजाया। उसकी ध्वनि सुनकर धर्म का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देने वाले यमराज ने बड़ी भक्ति और वैभव से दोनों भाइयों की पूजा की। सबके हृदय में बसने वाले प्रभु के सामने झुककर उन्होंने पूछा — “हे विष्णु, लीला से मनुष्य बने हुए, हम आप दोनों के लिए क्या करें?”

श्रीभगवानुवाच

गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम् ।

आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥

*śrī-bhagavān uvāca guru-putram ihānītaṁ nija-karma-nibandhanam ānayasva mahā-rāja mac-chāsana-puraskṛtaḥ*

अर्थ: श्रीभगवान् ने कहा: महाराज, मेरी आज्ञा को शिरोधार्य कर मेरे गुरु के उस पुत्र को यहाँ ले आओ, जो अपने कर्म-बन्धन से यहाँ लाया गया है। (स्कन्ध 10, अध्याय 45, श्लोक 45)



दैत्य पञ्चजन के शरीर से बने शंख को बजाकर कृष्ण संयमनी में यमराज को बुलाते हैं; मृत्यु के स्वामी दोनों भाइयों की पूजा करते हैं और प्रभु की आज्ञा से गुरुपुत्र को लौटा लाते हैं।

यमराज “ऐसा ही हो” कहकर बालक को ले आए। यदुश्रेष्ठ दोनों भाइयों ने उसे गुरु के हाथों में सौंपा और कहा — “कृपया अपनी इच्छा का कोई और वर माँगिए।”

## गुरु का आशीर्वाद और मथुरा-वापसी

सान्दीपनि ने उत्तर दिया — “वत्स, तुम दोनों ने गुरु का ऋण पूरी तरह चुका दिया। जिसके शिष्य तुम जैसे हों, उस गुरु की कौन-सी कामना अधूरी रह सकती है?”

गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ।

छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥ ४८ ॥

*gacchataṁ sva-gṛhaṁ vīrau kīrtir vām astu pāvanī chandāṁsy ayāta-yāmāni bhavantv iha paratra ca*

अर्थ: हे वीरो, अपने घर जाओ। तुम्हारी कीर्ति संसार को पवित्र करे, और वेद इस लोक में और परलोक में तुम्हारी स्मृति में सदा ताज़े बने रहें। (स्कन्ध 10, अध्याय 45, श्लोक 48)

गुरु की आज्ञा पाकर दोनों भाई वायु-से वेगवान और मेघ-से गरजते रथ पर तुरन्त मथुरा लौट आए। बहुत दिनों से बलराम और कृष्ण को न देख पाई प्रजा उनके दर्शन से ऐसे आनन्दित हुई जैसे कोई खोया धन फिर पा ले।

## इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रेम पाने के लिए प्रभु अपना ऐश्वर्य ढक लेते हैं। माता-पिता के ईश्वरता-ज्ञान पर परदा डालकर कृष्ण उपासक की दूरी के बदले माँ की गोद चुनते हैं। विस्मय नहीं, वात्सल्य ही वह बन्धन है जो उन्हें सबसे प्रिय है।
2. माता-पिता का ऋण पूरा नहीं चुकाया जा सकता। जिनसे यह देह मिली और पत्नी, उनका ऋण सौ वर्ष की सेवा से भी नहीं उतरता; समर्थ होकर उनकी उपेक्षा जीते-जी मृत्यु है।
3. जो पालते हैं, वही सच्चे माता-पिता हैं। कृष्ण नन्द-यशोदा को पिता-माता कहते हैं क्योंकि उन्होंने उन्हें अपनी सन्तान की तरह पाला। हर उस हाथ के प्रति हम कृतज्ञ हैं जिसने हमें खिलाया और बचाया।
4. समस्त विद्या का स्रोत शिष्य बनकर बैठता है। सर्वज्ञ होते हुए भी कृष्ण सान्दीपनि की देवता की तरह सेवा करते हैं। जब वे गुरु के सामने झुकते हैं, तो कोई विद्यार्थी स्वयं को विनय, सेवा और गुरुदक्षिणा से ऊपर नहीं समझ सकता।
5. समुद्र और यम भी उनकी आज्ञा मानते हैं। समुद्र भेंट लाता है, और लोकों का दण्डधर झुककर उनके आदेश पर एक दिवंगत आत्मा लौटा देता है। मृत्यु स्वयं प्रभु की सेवा करती है।

## एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में हृदय को जो छूता है, वह है प्रभु का स्वयं को इतना छोटा बना लेना। जिन्होंने अभी-अभी कंस का वध किया, वे सिंहासन नहीं लेते; उसे उग्रसेन को देकर स्वयं को सेवक कहते हैं। जो वेदों के स्रोत हैं, वे किसी भी अन्य शिष्य की तरह सान्दीपनि की सेवा करते हैं। जिन्हें देवता पूजते हैं, वे अपनी माँ के आँसुओं से स्वयं को नहलाने देते हैं। नीचे उतरा हर कदम प्रेम की ओर एक कदम है। हम महानता को दूसरों से ऊपर उठाना समझते हैं; कृष्ण दिखाते हैं कि दिव्य महानता झुकने में आनन्द पाती है — माता-पिता के आगे, पालक पिता के आगे, गुरु के आगे। और जब अन्त में वे अपनी प्रभुता का प्रयोग करते हैं, तो अपने लिए नहीं, गुरु के शोक के लिए: वे एक बालक को लौटा लाने मृत्यु की नगरी में चले जाते हैं। हम भी उनसे अपने पालने और सिखाने वालों का सम्मान करना सीखें।

## एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज किसी ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसने आपको पाला या सिखाया — माता-पिता, कोई बड़ा, कोई शिक्षक — बिना कहे सेवा का एक छोटा-सा काम कीजिए, यह स्मरण रखते हुए कि कृष्ण स्वयं देवकी, नन्द और सान्दीपनि के आगे झुके। यदि वे अब आपके साथ नहीं हैं, तो उनके नाम कृतज्ञता की एक प्रार्थना अर्पित कीजिए। आरम्भ में धीरे-धीरे जपें: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

## उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह पैंतालीसवाँ अध्याय प्रभु को कंस के पतन के बाद एक परिवार और एक नगर को सँभालते, और फिर सान्दीपनि के आगे शिष्य बनकर विनम्र होते दिखाता है। इसका एक ही सूत्र है — परमेश्वर से नीचे की ओर बहती श्रद्धा: कृष्ण माता-पिता, पालक माता-पिता और गुरु का ऋण चुकाते हैं, और गुरु के लिए यम को भी एक पुत्र लौटाने की आज्ञा देते हैं। वही कृतज्ञता हम अपने घरों में भी ले चलें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

---

## संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), अध्याय 45।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust.
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन और अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी और लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से सम्बद्धता या अनुमोदन का कोई संकेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: [kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-45-krishna-rescues-his-teachers-son-hi.html](http://kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-45-krishna-rescues-his-teachers-son-hi.html)

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट